तृतीय अध्याय

गुण
गुण

साहित्य शास्त्र के इतिहास में गुण का उल्लेख अत्यन्त प्राचीन है, क्योंकि किसी वस्तु की प्रशंसा में उसके गुणों का उल्लेख करना अत्यन्त संवृद्धि और स्वाभाविक बात है। माध्यम संस्कृत गुण है, क्योंकि साहित्य, कला या संगीत के आस्त्रादन में प्रशंसा का भाव संक्षेपण मद्दत करता है। जब वास्तविक के महाकाव्य का पाठ कृष्ण-जय ने किया, जीवियों ने कहा —

"पाठ में घेने च पहुँचा।"

"वही गीतस्य माध्यमः स्नानान्तरः व चिन्हेष्बन।" ७ ्

वास्तविक के काव्य में हृदय को प्रत्यया की भांति प्रस्तुत कर केंद्रीय श्रेणी को प्रतिलिपि की त्रिविक्रमकेतु प्रत्ययानुप्रस्तुति दर्शित है। २ यह गुण भाषा के अनुसार भाविक है। ३ अध्याय १, मनोरथ, श्लोकों का समावेशन, उचित समाचार और सर्वनाथ, समता तथा कथा और वाक्य के माध्यम का उल्लेख भी रामायण में किया गया है। ४ रामचरितं विषेशान्तरः में रचा गया है। ५ किंतु अनुसार में राम बुद्धिमान की वाणिज्यी की प्रशंसा करते हैं उसे वास्तवरूप करते हैं।

---

1. रामायण २१४-२५, ३२ क्रमांकों के साथ
2. भीम २१६-२७
3. काव्य २१५३
4. रामायण ३३, २१४२, बालकांड २१४३
5. रामायण १-४, ७-२६ (मोहन रामायण-वालकांड के उद्धरण)
कौटिल्य ने भी गुणाँ की चर्चा की है। कौटिल्य ने राजशासन देश (आंशी, लेख) के बारे में गुणाँ की चर्चा की है। वे हैं—अलक्ष्य, सम्बन्ध, परिपूर्णता, माधुर्य, होआप, स्पष्टता। सुदर्शन के विभिन्न में भी माधुर्य, कार्तिक और उदारता नामक गुणाँ के उल्लेख हैं।

काव्यशास्त्र में सर्वप्रथम गुणाँ की चर्चा भरत में आयी। भरत ने काव्य के दश, गुणाँ का उल्लेख किया—

**लेख: प्राय: समता समाधि: माधुर्य: पद्माल्यम:। कृष्ण व्यक्तित्व वारसा, कार्तिक का काव्यश्च गुणां दशेऽ।**

इसके बाद उन्होंने धीरे-धीरे दस गुण स्वीकार किये, किन्तु उनका परिगणना भिन्न क्रम में किया—

---

1. किबिंधा काण्ड, २-३०, ३०, ३१।
2. महाभारत, आदिवर्ग, १-२८, २-२७।
3. , , १-३७।
4. , , २०० - ५६। जुलैय रामायण-धुरंध १६-२०। कालिकास कृष्णामयिल्लासुम् (रूपो १२ श) भारतवि-किरात - २-२५।
5. महा-संहा - २-५, ५-६, ४३-१। शाश्व २-३८५, ६२-४२। उपोत्सर-६३-६।
6. कृष्णास्त्र, २-६।
7. सुदर्शन-धुरंध शास्त्र: (आज्ञान भृगुराकाश, १२७९)।
8. नाट्यास्त्र, २० ।६६-४५।
स्त्रेष्ठः प्रसादः समता माहुषीकुलमारता।

अश्वक्ष्मतु रुदारत्नांपीः कान्तिसभाग्यः।

सम्बन्धः गुणाः के परिस्याण में पांचायत श्रेष्ठ भारत के क्रम है
विवरण में कोई सामाजिक महत्व का प्रयास नहीं है, यह केवल इन्द्र के कुरुक्षेत्रशासन पढ़ दिया गया है। किन्तु यदि की अनेक परिस्थितियों भारत की परिस्थितियों
से हिन्दु है। उसके समाधि, कान्तिराहि गुणाः का तो भारत के समाधि,
कान्तिराहि गुणाः से कोई सम्बन्ध नहीं है किन्तु भारत ने केवल तीन गुणाः
को की स्वीकार किया।

माहुषीभिभायक्षणः प्रसादे च सुमेधा।

समासाधिता पूर्णाः सा पदार्थिन प्रस्तुते।
कैंचिदाजुभिभिह्यस्तवः समस्तान्ति ब्रह्माश्च।

वामन ने इस गुणाः का उल्लेख किया, परन्तु उनके प्रत्येक
गुण के शब्दगुणाः श्रेष्ठ गुणाः और अवश्य दो भेद मानने। इस प्रकार वामन की गुणा संख्या
की सहायता ही पहुँचती है। 3 यह प्रेरणा उन्हें सम्बन्धः भारत से मिली है, क्योंकि भारत
ने इस गुण मानते हैं, उनमें से अनेक के दो लक्षण निकले हैं। यह बात विभक्ति-
गुण के अनुसार यह संकेत करती है कि भारत शब्द और अवश्य दोनों ही मानते
हैं।

क्ष तात गुणाः की संख्या के सम्बन्ध में दो उपस्थितियों स्पष्ट

1. काव्या, ३०१-५०
2. काव्यालंकारः २१९-५
3. काव्यालंकारः ३६- अधिकारः ३, काव्याय ३-५
4. नाट्यशास्त्रः २३३-५, २३५-३५२
हो जाते हैं। एक तो गुणाओं की संख्या को वर्धित करता है, दूसरा उसे कम
से कम में समाहित करने हेतु, \( = \frac{\text{बधर} \cdot \text{बधर}}{\text{बधर}} \) कर लेना चाहता है।

वामन के पर्वस्था भोजने गुण की संख्या में और भी बढ़ी की।
उन्होंने बौद्ध गुणाओं का वर्धित किया। उन्होंने तीन प्रकार के गुण मानने-
वाद्य, शास्त्रीय और वैसेषिक। इनमें वाद्य गुण, शास्त्रीय गुण,
और वैसेषिक गुण सामान्य रूप से दोनों हैं, किन्तु विशेष सन्यासी
में गुण बन जाते हैं। भोज ने भरत, दासी और वामन के दस्तरों को किंचित्
लक्षण खेत्रों के साथ स्थिकार की, किये इसके अतिरिक्त चारों नवीन गुणों
की उद्भावना कर दी। वे नवीन गुण, शास्त्रीय और वैसेषिक ये हैं — उदात्त, वौरंग्य,
प्रेम, सुखदत्त, साधन, ग्रामीण, विस्तार, संज्ञाय, सचिवत्व, भाविक,
गति, रीति, उक्ति तथा प्रौढ़ि।

भोज के द्वारा बालालित वैसेषिक गुणाओं का विवरण इस प्रकार है — अध्यात्म (अनुरूप रूप में), अध्यात्म (अनुरूप रूप में), राज (दुर्बिनादिर में),
अन्य (अन्यान्य रूपांगों में), अन्यान्य (अन्यान्य रूपांगों में), अन्यान्य (अन्यान्य रूपांगों में), अन्यान्य (अन्यान्य रूपांगों में), अन्यान्य (अन्यान्य रूपांगों में), अन्यान्य (अन्यान्य रूपांगों में), अन्यान्य (अन्यान्य रूपांगों में)
किल्ले (वाल्यानादिर में—जहां गुण अर्थ का सम्पत्ति संकेत होता है),
नेतारी (प्रथेलिका आंधि में), स्नातकों (प्रथेलिका आंधि के कारण आंधि स्पष्ट
हो जाने पर), विश्राम (दक्षिण पूर्व फुलक कि स्थाने जाने पर, जहाँ निर्मल
कल्याण ही अधिक हो), अन्यस्थों (अन्यथा विशेषणों के अपने आप सटिक
होने के कारण), देवता (महाकाव्यों द्वारा प्रस्तुत होने पर), ग्राम (गृहात-रूप, अलेख्य तथा अन्य रूप ग्राम कोष अर्थः (संतोष अथवा संधिपत्व के
स्वीकृत, गुण और लक्षित होने पर गुण हो जाते हैं। ग्राम के गृहातरुप, अन्य
रूप और अलेख्य रूपों के द्वारा तीन लीन घरों और कर के भोज ने वैसेषिक गुणाओं
की संख्या की 24 कर दी। इसके अतिरिक्त वाद्य और वाद्यार्थ दोषात्मक
शास्त्रीय वौरंग्य और वौरंग्य शास्त्रीय दोषात्मक शाक्ति और भी है।

1. विस्तृत विवेचन-भोजज शृंगारप्रकाश, पृ 301-314
श्रीमद्भगवद्गीता ने लेखा, लालित्य, गंभीर्य, सख्मारता, आदर्श, तथा छोटा-बड़ा शब्द, माधुर्य, सौंदर्य, सोमलता, उत्तरात्मा प्रीति तथा सामाजिकता-वे हैं कर्मणु एवं प्रसाद, सत्यार्थ, यथार्थ्य, प्राचार्य, पाप और राग हन्न हैं उभय्युगाओं को मिलाकर अठारह गुण माने हैं।

दूसरी ओर आनन्दवर्धन, शरीर, प्रयत्न तथा हैमचन्द्र शर्मा आचार्य ने भाषा द्वारा प्रवर्तित गुणात्मक के ही सिद्धान्त को अधीक्षार किया।

गुणाओं की संख्या के सम्बन्ध में इन आचार्यों ने भाषा को पूर्णता स्वीकार किया।

कृत्तिका ने परम्परा से हट कर गुणाओं का विवेचन किया।

उन्होंने कवित्वभाव को प्रभाव मानते हुए सख्मार विचित्र और मध्यम-तीन काय्यार्थ मार्ग और उनमें प्रयक्त के चार विशेष और दो सामान्य गुणाओं का निम्नुपात किया। सामान्य गुण काय्यार्थ के भीतर गुण हैं-उनके भाव में काय्यार्थ नहीं रहता। तीन तीन मार्गों में उनकी अस्तित्व समान रूप से रहती है। सामान्य गुण हैं, श्रद्धालु और सोभायत - औरतील और भाव यथार्थ्य और सोभायत का अर्थ है यथार्थ्य विधान और सोभायत का अर्थ है तेज से समाप्त करने का गुण, जिसका मूल आधार प्रतिभा है। इसके अतिरिक्त चार विशिष्ट गुण हैं जिनके अर्थ प्रत्यक्ष गुण में भिन्न रहते हैं-वे हैं: माधुर्य, प्रसाद, लावण और आभिजात्य।

इस प्रकार कृत्तिका के केंद्रम गुणार्थ की संख्या 6 है और गुणाओं की संख्या के सम्बन्ध में इन दोहकोइनों को केलेट हुए दो भिन्न प्रश्नों में स्पष्ट हो जाती हैं। गुणाओं की संख्या को अन्वेषण प्रभुद थाने में भोज ने तपस्वी बदल हिंसा किया। किन्तु उन्होंने गुण सम्बन्धी विवेचन को स्पष्ट करने के स्थान पर और भी अस्पष्ट कर दिया। भोज के

1. भोजजु षुंगार प्रकाश-४० ३२६-२०
2. कार्यावत आरश रीति एक गुण, पृ ६३१-५८, अकोलकीजीति-भृतिका, दे
कैसे गुण तो मान्य गुणां के प्रमेय मात्र थे। कुछ असंकर ही हैं। कुछ एक अखिलस्वरूप हैं। श्रीमूर्ति और ब्राह्मण ज्ञान काल से पूर्ववती बातावशेष की वृजित में कथित हैं, जिन्हें वाद के वामन के विचार के पथ से रसभाव है। भोज ने दाता और वामन के विचार से आधार पर उद्भवनार्थ कर दाताँ। लेकिन वे एक से लगा और दूसरे से नाम गुण तो लेते हैं। किसी जिसे एक गुण के वैक- 
तिक रूपों को नये नाम दे देते हैं, जैसे वामन की अर्थ-प्रमाण के तीन रूपों को 
उन्होंने तीन रूपों को उन्हाँने तीन स्वतंत्र गुणां का नाम दे दिया। भोज के 
श्रीमूर्ति, गांधी, वैदिक और ज्ञानी तथा श्रीमूर्ति स्पष्टतः अर्थ के चलतार है। 
हसी कथार प्रतिपादन गुण देते हैं जिनका सबके श्रवण-अभिभावित है।
किन्तु भोज उन्हें स्वेच्छा श्रवणवृत्ति या अनुवाद में हाल देते हैं। वस्तुतः शब्द और 
अर्थ का पार्थक्य दूर तक निहा पाना ही कठिन है। वामन दस गुण में 
ही इस पार्थक्य को निहा उनके में अपना सिद्ध हुए, फिर भोज उसे चौकीस गुण में 
कैसे निहा पाते। इस पार्थक्य का आधार आश्वास्विभाव है, किन्तु 
भोज ने उसे भी विशिष्ट गुण नहीं किया। इसीसे उनका विचार अत्यन्त 
आवश्यक और अन्तर्गत हो गया है। अग्निपुराण के प्रमेय के विषय में भी 
यही कहा जा सकता है। उसका विचार और भी अवश्यक है। पत्ते लो शब्द- 
गुण, अनुवाद और अभिव्यक्त के वर्ग की प्राभाविक नहीं है। शब्द और गुण 
के समकार प्रय: एक इंग्रेजी की सीमा का उत्सर्ग कर बैठते हैं। फिर उसमें 
गुणों का पृथक वर्ग तो अपनी स्वतंत्रता की रचना करने में सर्वथा असम्भव 
ही है। दूरार्थकार ने दाती और वामन और भोज के विचार को अंग्रेजी उल्लिख 
यो दिया है।

यह पी तथ्य है कि भोज के द्वारा प्रतिपादित चौकीस गुण या 
अग्निपुराण द्वारा कथित अर्धाश्रम गुणाँ के विचार को मान्यता प्राप्त नहीं है। 
वापसीन विवाद दशृष्टि और तीन गुण मानने के सम्बन्ध में ही रही 

1. हिंदी काव्यालकार सुभाषित, संपातो हरो गोन्टू, भूपिका, पृ 68-70
हा विवाद केवल गुणों की संख्या का ही नहीं, अपितु गुण के स्वरूप और काय्य के स्वरूप का भी है। वामन ने गुण को शक्ति और कल्याण का धार्मिक माना और रीति के कमलकार रूप है। अन्विन्यालिङ्गों के कसुरार गूंण काय्य की अन्तर्गति से सम्बन्ध है और अब्जन्य वाष्पस्प प्रस्तुत है। अन्वित गुण और कसुरार में अन्तर किया —

तपवृक्तकल्पन वेदाद्यां में गुणाः स्थुलाः।
कणांगतिद्वारा मन्त्रालयाः कुडाळविवधू॥
(अन्वयं — २१७)

इसका कर्य है कि गुण अन्तर्गतित है और कसुरार अन्तर्गतित। अन्विन्यालिङ्गों ने, भाषा से तीन गुण गृहण कर गृहस्थस्मृतिप्रविषय को सूचित नया आधार दिया। उनके मत में गुण रस के धार्मिक हैं, रसमय चिन्तित रूप है। वामन ने गुणों को जो आधार दिये, वे स्थूल और मूर्ति थे, अन्विन्यालिङ्ग वदन आधार देखने और व्यापक हैं। फलतः वामन के गुणों की संख्या अधिक और अन्विन्यालिङ्ग के गुणों की संख्या कम है। अन्विन्यालिङ्गों बादास्त्रयों, जों और प्रसाद ये तीनों गुण माने। उनके कसुरार रसांग्रहण की प्रक्रिया में चिन्ता की तीन अवस्थायें होती हैं—चुनित, दीर्घित और व्यापकतित। तीनों और रसाना बादास्त्रयों वे आश्वासन में चिन्ता द्विवेदीम् तथा वीर रावण बादास्त्रयों वे आश्वासन में दीर्घित हो जाता है। इसके अतिरिक्त सभी रसों की अन्तर्गति के समय चिन्ता की एक और अवस्था होती है, जिसे सम्पर्कस्थ हो चिन्ता के व्यापकताके प्रसिद्ध है। यह रस प्रतीति का सही परिणाम होता है। इन्हें चिन्तालिङ्गों के द्वुस्प सम्पर्कस्थ होने के कारण गुण भी स्वाभाविक तीन होते हैं। दीर्घित का प्रतीक्षा पार्श्व, दीर्घित का अभिज और व्यापकता का प्रसाद।

आन्विन्यालिङ्ग के इस विवेचन के बावजूद चूज प्रश्न रह जाते हैं कि गुण का काय्यार्थ (तन्त्र तक्षा काय्यार्थित्व) (अन्व्यालोक २-६) काय्य रूप में कसुरार का आर्थिक भौगोलिक कह कर फिर उन्हें या या का आधारीत कहना आयत
नहीं है? दृष्टि, दीपित आर्द्र चिन्तुस्वरूपों का रस से क्या सम्बन्ध है? क्या वे रस से अभिन्न है या वे रस का कार्य है? अतः भिन्न हैं? जब रस से पृथ्वी गुण का समुच्चय नहीं हो पाता, तो गुणों की संज्ञा पाने की आवश्यकता ही क्या है?

अभिन्न गुण पे इस सम्बन्ध में निवेदन किया। मुल्यतः चिन-चिन्तुस्वरूप ही गुण हैं। वृजूष, प्रशांत और माधुर्य दीपित, समकिर्त अवता व्यापकता तथा आर्द्रतात्विक दृष्टि के रूप में ही रहते हैं। अतः रस के बिना गुण का प्रभुण की नहीं उठता। फलतः रस कारण है और गुण कार्य।

इसलिए जब यह कहा जाता है कि दीपित राजर्ष का अर्थ है, जो दीपित का रूप में अन्तर्भित क्षेत्र कार्य का कारण पर आरोपण (Superimposition) किया जाता है। किन्तु राशार्द्र की स्थिति विनियम-वैद्यान्त नहीं गृहीत है, अतः कार्य-कारण का विनियम नहीं किया जा सकता।

इस स्थिति में गुण को पृथ्वी कार्य तत्व का पद बनकर देने में विशेषकर सन्देह पैदा हो गई है, किन्तु इसको व्याख्यात पूर्वानुपातों के द्वारा आर्द्रतात्विक तत्वों को स्वीकार करते दृष्टिकोण होते हैं, तो उनके गुण का (जो दीपित स्थिति के अनुसार पृथ्वी तत्व है) अस्वीकार कठिन है। जब हम व्याख्यात्तियों के पृथ्वीकोण ठीक समझते हैं और उनकी कार्य पृथ्वी की कल्पना को पूरी तरह मिलते हैं, तो गुण को पृथ्वीत्व मानना ठीक तरह से समझ में आ जाता है। विभाज्ञात आर्द्र के द्वारा स्वाधीन आर्द्रव्यमूल तक पहुंचता जाता है, किन्तु यह आर्द्र कब होता है? विशेषकर की किसी न किसी विचारुति की दशा में, बाह्य वह किसी ही सत्य बना न लेते। यदि यह सत्य है कि गुण का कारण रस है, तो समान रूप से यह भी सत्य है कि गुण राशार्द्र की प्रकृति के विचारचैतन्य नहीं हैं।

1. लोचन २७, ७० पृष्ठ ८०
वस्तुतः आस्वाद की चरम परिपर्यावरता दृष्टि, दीपित और समक्षत्व में ही है।

इतिक रसायनप्रयत्न की प्रगतिया में केवल तीन दशा ही अन्तःपूर्ति होती है अतः तीन से अलग गुणावलम्ब की कल्पना गलत है। आधार निर्मितु ने वामन के गुणावलम्ब का बनान कराते हुए उन्हें या तो गुणावलम्ब में अन्तःपूर्ति कर दिया या दोषभाषणमौत बताता फलता उन्हें अंतःवात वाशुद्ध दैविक-मात्रा सिद्ध किया।

वामन के दारा कथित इलाका गुणा श्रीर, शेष, समाधि, उदारता प्रसाद, ओज गुणा में अन्तःपूर्ति हो जाते हैं। मांसून माध्यम में और अर्थ-व्यक्तित्व प्रसाद गुणा में अन्तःपूर्ति हो जाती है। ओज का लक्षण गाढ़न-नल्ला है, शेष में स्त्री पद एक अति प्रतीत होते हैं, प्रसाद में पदवन ओज नियंत्रित शैलिश्चर्यपूर्वक होती है, समाधि में अन्तःनिरोध अन्तःक्रम रहता है, उदारता में विनिर्णत रहता है—उसमें पद नृत्यरूप रहते हैं। ये सभी विशेषताओं ओज गुणा के लक्षण में समाविष्ट हैं अतः ये सारे गुणा व्यक्तित्व के ओज में समाविष्ट हो जाते हैं। वामन के शब्दवाद श्रीर में स्वरूप पृथक-पृथक है, यह भी व्यक्तित्व के माध्यम का वात-वातक है। अर्थव्यक्तित्व में पद अपने कर्म की पृथक प्रतीति करा देते हैं, यह प्रसाद का लक्षण ही है।

समाज में एक ही मात्र का आर्थम से अन्तः तक अर्थव्यक्तित्व रहता है, जिन्दु यहे यागमित्र तर तो एकसत्ता उत्पन्न करने के कारण दोष है। अर्थव्यक्तित्व बन्ध का निर्माण और वृद्धिकु दोष का भाव रूप है। पदोज्ज्वलरूप काल्पनिक 'गर्भमुख' दोष को निषेध मात्र है। अतः वामन के दर्शनवद्व गुणा की कल्पना ठीक नहीं है।

कर्म-प्रौढ़-रूप ओज, जिसमें एक शब्द के लिए सम्पूर्ण वाक्य का प्रयोग, सम्पूर्णवाक्य के लिए एक शब्द का प्रयोग, व्याख्या समाधि तथा साधित्व-प्राय विशेषता का प्रयोग होता है, उल्लेखनीय ही है। ये दोनों गुणा
भावात्मक नहीं हैं। कृष्ण-वैमल्यकृत प्रवास-वहां आवासक का गुण है और बनावस्था का परिचय रहता है - ऋषिपरंपरवृद्धों का निर्ययन्त्र है।

केशुगुण मार्मरी उद्धोतविश्व भाग है और यह उद्धोतविश्व काव्य नैतिक में क्रम ही रहता वाहित, क्रमथा रचना क्रमहीनतृत्व दौष्ट से युक्त हो जायगी। यह भी क्रमीकृतत्व दौष्ट का निर्ययन्त्र है। उददारामे ग्राम्यत्वे दौष्ट का क्षेत्र है।

सौहार्यां भी 'पार्श्व' दौष्ट का क्षेत्र है। सौहार्यां भी उसके विशिष्ट है। पर्नीत्व का कृष्ण है - श्रीप्रम मर्मर भाग है। सौहार्यां में भागल वाचन शब्दों के परिहार द्वारा भागल की परंपरा का परिहार किया जाता है। अतः सौहार्यां भागलाप अर्थलील दौष्ट का परिहार ही है।

क्रम के अवश्यक या क्रम के भंग न होने को समता नामक क्रेशुगुण कहते हैं, यह प्रकार्भ दौष्टों का क्षेत्र है। वस्तुसारों के स्वभाव की भावितेकृत रूप क्रम द्वारा स्वभावोत्तेकृत क्रमारूप से अभिन्न है। रूप से दीपकृत कान्ति-गुण रस्सन्तिय आर्य के समावेश हो जाता है। केशुगुण समावेश की गुण ही नहीं है। वामन के केशुगुण समावेश का स्वभाव है किसी बिंदु के स्तरिय होने से वास्तविक क्रम प्राप्त हो। किन्तु यह तो गुण ही नहीं सकता। हाँ काव्याक्रम के लिए यह वह आवश्यक है कि केशुगुण के विना स्मृति, गुण, रीति, अर्थात्-कुछ भी हाथ नहीं लगाना। इति: वामन के ही इन वर्ण-गुणाओं की कल्पना भी निराकार है।

हस प्रकार विनिवादी आचार्यों ने वामन के केशुगुण का उन्न-भाव तीन गुणाओं में कर दिया। उदवर्ती युग में सिद्धान्त: तीन तीन गुण ही स्वीकार हुए। पंडितराज ने भी गुणाओं की स्तंभा तीन ही मानी।

पंडितराज ने 'जाच' - वन्दी और विशेषता: वामन के वृष्टि-कोण को भी सामने रखा। उन्होंने शब्द और अर्थ के गुणाओं की वामनकृत

1. हिंदी काव्यालंकार सुब्रविध भूमिका, पृ ७५-७३
2. (ल) काव्यप्रकाश-सूत - ६६-६७, रघुन उत्तास, पृ ६५-६५।
परिभाषाशास्त्रों को परिवर्तित कर उन्हें दैवत रूप देते हुए उपस्थित किया -
इस पूर्वक वाणम का संज्ञात्वम विभाजित: पणिण्डराज के यहां - अविद्य -
वैक्किकर्षिकसन्धु - वैण्यामो वदा: परिहारोण विनिमयादेवेशु पदेषु -
लोकोत्तरश्रोभारक्षास्वरूप्याय विभाजित: - बन गया। वाणम का शारीरक दारीहें
पृष्ठ कर उन्हें नमस्कार का नवीन लक्षण दिया - वन्यतवाणापालिकाशिल्कत्वयोः;
पञ्चायतस्थापन समाधि:।

इस अर्थमाण्डल वाणमानुष्यस्मृति देते हुए भी उन्हें स्वीकार
परिवर्तित किया। निम्न का अर्थमेण्डल शेषभे का लक्षणों प्रदान:।
वदत कर - एवं क्रियापदस्पर्याय विद्यमान:चौष्टयस्तथेऽतस्तुंगत्वाशुक्लैः
सांस्कृतिक एवर्गुणयोः संयोग: शेषभे:। हो गया।

वाणम के इस शब्दमुण्डल और इस अर्थमाण्डल का चिन्तार्थी मार्ग:
के अूर्त हो दार्शनिक नेत्र ने तीन गुणाम, वौषधावल और अन्नारी से इस पूर्वक
वतार्ध कर दिया -

स्वेतसेवार्ताप्रभासमाधिविशावनामोजीश्वक्रक्ष्णाया: नाथमाधिविशावनामोजीश्वक्रक्ष्णाया:।

न च स्वेतार्ताष्ट्रयोः सथायित्वादव्यायानां रोकोपुक्कलामानान्यायान्यायान्यायोः
नाम, प्रभासमायोः सथायित्वादव्यायानां रोकोपुक्कलामानान्यायान्यायान्यायोः - तत्त्वः
कृष्णानुपुराणिः इति वाचमुः, माहविविवेके प्रसादाविवेके वेदिः सुचित्वात्।
माहविविवेके परं प्राप्तायमस्तुंगतत्वादुपुराणमः अवगतः। एवं च सर्वमः
व्यङ्ग्यश्च! प्रयोगारः भावः। समता तु सबविन्यासिते। प्रतियोगिण्याख्यातिवेकसः
पथे माहेषिकृतेण एवलाल्या।...... ग्रामस्तवः ग्रामस्तवः स्थायासु कानिजारुणावियोः
गौराक्षित, प्रसादेन वाचितवकोऽविश्वतिः।

1. (क) प्रोज़ाज शुभारुपकाश, पृ २४०।
     (ल) विस्तृत -विक्रमोप श्वेत रीति सूचना, पृ २५४-२६२।
गुणाँ का स्वरूप:

कार्यशास्त्र के प्रथम आचार्य भुरत ने गुण का लक्षण और परिभाषा करने के पूर्व दोषाँ का लक्षण परिभाषण किया। उन्होंने कहा -

"गुणः विपरितेद्योरं..." । 2

गुण इन ( दोषाँ ) के विपरित है। विपरित हैं के अर्थ के समन्वय में पश्चिम रहा है। अन्तर्दृष्टि गुण के अर्थ के विपरित का अर्थ अनुभव अथवा "विधाय" है। बाद के भविष्यवादी आचार्य भी इसी दृष्टि के हैं उन्होंने भी दोष के अर्थ को गुण माना है। हाव नोन्द्र ने इस सम्बन्ध में निम्नलिखित विवेचन किया है -

"परिपूर्व फिर भी भुरत के गुण विवेचन से यह सिद्ध नहीं होता कि उनके सभी गुणाँ की स्थिति क्षमात्मक है। उनके लक्षणों से स्पष्ट है कि यह गुणाँ को कोष्ठ कर शैश सभी की स्थिति निष्पक्ष ही भावात्मक है।

---

1. रामगायन, पृ. 80 अं-80
2. नाट्यशास्त्र, भाग्रोहोरेस, भाग 2, प. 233
उदाहरण के लिए समान की सिद्धि तथा की साधारणता है, परन्तु उदाहरण, सौंदर्य, आज्ञा आदि गुण जिनमें विध्वंस, सुकुशल अथवा आदि विशेष सम्पत्ति आदि का निर्माण रूप से सृष्टि रहता है, कैसे साधारणता हो सकते हैं? अतः यथार्थता और वैपरित्य की स्थिति विलोप रूप से साधारण हो जाती है, परन्तु ज्ञा का सृष्टि रूप युगः साधारण स्थिति है, क्योंकि ज्ञा के ज्ञात रूप में उसकी साधारणता स्थिति भी होती है। इसलिए विचारण का अर्थ वैपरित्य की मानना संगत है। भूत ने दोषा का विवेचन बहुत किया है। ज्ञात उसी रूप से दोषा के सम्बन्ध से - उनके विचारण रूप में - उन्होंने गुण से भी विवेचन किया है। और जैसा कि जैन राजकीय ने समाधान किया है, उसके प्रमाण धर्म सामाजिक व्यवहार की दृष्टि से रा गया है, जिसके बिना भूत दोषा वे अति व्यक्त रहते हैं और गुणों की कल्पना यह प्राथमिक संख्या दोषे के निषेध में (अभाव क्वालिव स्यार्स्य) रूप में ही करते हैं।

कारण हमारा निषेध यह है कि भूत ने गुण का दोष का वैपरित्य की मानना है, परन्तु (जैसा कि हिदायत मत रखते हुए भी एक स्थान पर डाला लगभग ने कहा किया है) निर्दिष्ट वह गुण सूची विवेचन वह दोषे के ही क्रमशः विस्तर रूप नहीं है। यह तो उनके नामकरण से ही स्पष्ट है। अभाव हेतु इस वैपरित्य सामाजिक है, विशेषता नहीं है।

भूत ने गुण को परम्परा सम्बन्ध से रा रा भी माना।

वाही ने भी भूत के ही दश गुण का उल्लेख किया। उनके भूत के ही ज्ञा का वैधिक भूत के शोभावाचारक अभ्य है और वे साधारण नहीं हैं। कायम की शोभा और उनके विद्वानक गुणों का सम्बन्ध उनके भूत के सीधे सब्ब\n
1. हिंदी काव्यालंकार सूक्ष्माचि -सूतरा डावा गीत -पुस्तक ५-५६
2. वर्ती
बांत अध्याय 9

वामन ने गुणा का नाम भम्मसा किया। उन्के अनुसार कविताक के तोभास्तराण श्वसुप्रथम कहलाते हैं। मध्य बांत अध्याय के भें अध्याय को शोभासम्पन्न करते हैं, गुणा कहलाते हैं। वे हैं - ऑज, प्रसादवर्धिय यथा उपमान नहीं, कारण यथा उपमान अभास को काव्य शौभा की वृक्षता नहीं कर सकते।

गुणा विन्यास है, उनके विना काव्य में शोभा नहीं आ सकती। वामन ने गुणाओं को शब्द-अध्याय का ही धर्म माना, बल्कि रस को गुणा का ही धर्म माना किया।

ज्ञानकार ने गुणाओं को रस के आश्रित माना। उनके अनुसार जो प्रभावमुक्त रस के आश्रित रहते हैं, उनके रस रहते हैं। आचार्य मदन ने भी गुणाओं के आधार के अध्याय गुणाओं की ही माति कीमत मुक्त रस के उत्क्रांत हेतु बलस्वाभिमान गुणा माना। विश्वनाथ आचार्य ने भी इस मानक का अनुसरण किया।

इत्यादि वामन आदि आर्यपुर्व माधारी ने गुणा की शब्द और अध्याय के धर्म माना। उनके विवेचन से स्पष्ट है कि शब्द और अध्याय के चमलार गुणा के आधार में तत्त्व हैं। किंतु ज्ञानकार और उनके अनुसारियों ने गुणाओं को रस-धर्म माना। गुणाओं को रस का धर्म मानने के कारण उनका स्थान,
चित्रवर्धन हो गया। माधुर्य, बोध और प्रसाद चित की निर्मिता की स्थिति है, जो सभी रसों के आस्वादन के लिए अनवार्य है। चित की वही निर्मिता आनन्दवर्धन के शब्दों में समर्पित एक हो जाती है। 1

इसी आधार पर प्रसाद को शब्द और अर्थ की स्वच्छता का रूप माना है।

कोमल और परम्परा व्रता पद्म और उज्ज्वलित -इन दोनों प्रवृत्तियाँ के प्रतीक रूप माधुर्य और बोध गृह का मात्रा गये।

आनन्दवर्धन ने शूर्गार, कौशा आदि रसों में, बहुत चित्र आह्लादित और दीप्त होता है, वहाँ माधुर्य और बोध आदि गृहों के वचनों की बात कही, किन्तु दृष्टि, दीप्ति आदि चित्रवर्धन और गृहों के सम्बन्ध पर प्रकाश नहीं ढाला।

इस पर अभिषिक्त से प्रकाश दालते हुए कहता कि गृह चित की कस्था का ही नाम है। माधुर्य चित की द्रवित अस्थायी है, बोध दीप्ति है और प्रसाद व्यापक है। चित की यह दृष्टि, दीप्ति और व्यापक रस-परिपार के साथ घिरत होती है। इस प्रकाश अभिनव के अनुसार माधुर्य आदि गृह चित की दृष्टि आदि कस्थाओं से वरिष्ठ अभिनव हैं और दृष्टि उस कस्थाओं रसाधुरता के कारण उत्पन्न होती है, अतः रस को कारण और गृह को कार्य कहा जा सकता है। 2 कारण और कार्य में अन्तर अविनव्य है इसलिए रस और दृष्टि में भी अन्तर है, वह आकृति का है। किन्तु दृष्टि रस के आस्वाद के वेधान्तता नहीं होती, कारण: चित दृष्टि आदि का भी सृजन को पृथ्वी अनुभव नहीं होता। वह रस को अभिनव में निरंगन्त हो जाता है।

---------------------------------------------------------------

1. समरसवर्धन कस्थाय। पुष्करसाराश्रितः।
   स प्रसादो गृहोऽथः: स्वर्‌साराश्रितः।

   - भान्यालोकः २०६०

2. लोचन, भान्यालोकः, पृ ३०८-६
आनन्दवर्धन ने गुणार्द को रस के नित्य धर्म द्वारा रूप से माना है।

मम्मट ने गुणार्द को रस के उत्कषित और प्रकल्पित धर्म माना और उन्हें चित्रित आदि का कारण माना। अभिनव गुप्त ने गुणार्द को चित्रित आदि से अभिनव और रस को गुण का कारण माना था, किन्तु मम्मट गुण को चित्रित का कारण मानते हैं। मम्मट ने गुणारूप पर प्रक्षेत्र नहीं दासा।

विश्वनाथ ने अभिनव के ही अनुसार दृष्टि, दीर्घिति आदि आनन्द को ही गुण माना। परन्तु उनका मत था — क्रीभव या दृष्टि आस्तांकनरूप आश्लाय के अभिनव होने के कारण कार्य नहीं हैं, जैसा कि अभिनव ने किसी भौल तक माना है। आश्लाय या आश्लाय रस के प्रयोग हैं। दृष्टि रस का ही स्वरूप है, उससे भिन्न नहीं। १ इस तरह विश्वनाथ ने गुण को रस के ही अभिनव मान लिया।

इस भूमिका के बाद पंडितराज जगन्नाथ उदय। उनके सम्मुह भी सारे विवेचन और दृष्टिकोण है। उन्होंने मम्मट आदि विद्वानों के फलकों इस प्रकार रूपा कि इन पूर्वक्त रसों में माधुर्य, बोध, प्रकाश नामक तीन गुण रहते हैं।

इन रसों में माधुर्य की शापितक मात्रा आनन्दवर्धन के अनुसार विप्रम्य और करणा में उत्पादक बदली जाती है। —

'चुम्मारे विप्रम्यवधु करणे च गुणविवृत्त।
माधुर्यमाधुर्यायाति स्वस्तवार्थार्थिं मनोः।' २

-------------------------------------------------------------------

१. साहित्यपरिशिष्ट—परिच्छेद ५०३
२. अन्यायलोक—२५४
अभिनव ने भी कहा—

"संपौण्डरगारा-मधुकरली विप्रलम्भ: तलाशिप महरतम: कलणा।" 1.

बन्य आचार्य से इस कठोर को बदला, 2 जिसका संविक्षित विवरण परिलक्षित ने इस प्रकार दिया—

"उन्होंने संपौण्डर शुंगार में जिला माधुरि है, उसके अंक में कलणा रस में, उन दोनों के अंक विप्रलम्भ शुंगार में, इन सव भी अंक में शान्त शान्त रस में होता है, क्योंकि पूर्व पूर्व रस की अयोग्य उत्तर उत्तर रस में नया अंक हुआ होता है। यह कुछ लोगों का मत है।" 3

"दुसरी के शुंगार से संपौण्डर शुंगार से अंक में कलणा, शान्त में, इन दोनों के अंक विप्रलम्भ शुंगार में होता है।" 4

बन्यों के शुंगार से संपौण्डर शुंगार में कलणा, विप्रलम्भ शान्त में अंक होता है, नम भी ( परस्पर ) तारतम्य नहीं है। 5

इन दोनों में आदित्य श्रेणी अंक और रस की गुणा का कारण नहीं था, किन्तु ममता गुणा को विज्ञाति का कारण मानते हैं। ममता ने गुणा-स्वरूप पर प्रकाश नहीं डाला।


1. वैत्तिक लोचन
2. भोजपुरे शृंगारप्रकाश-राघवनु, पृ ३५८
3. (k) "कलणा है। तदिन माधुरि-कलणारदिष्टम् विप्रलम्भाभितेन्द्रतात् सातिशय्य, तेषु हि शृंगार-कलणा जापै।"
   — काव्यप्रकाश, संपूर्णप्रकाशकिः, भाग २, पृ १७७ (अतिवभ्रम)
   (व) "कलणा है।.. तन्माधुरि-कलणा-विप्रलम्भान्ते यथार्थिति-श्रेयोनार्थोत्तमः"
   — काव्यप्रकाश, साहित्यशास्त्रावलिः, भाग-२, पृ-१७७ (अतिवभ्रम)
   (अति पत्र पर केंद्रीय)
हन तीन मतों में से प्रथम और तृतीय मत में "करणों विषयः लघुमेव व काव्यरूपेऽ चातिश्चान्तिन्वितम्"

यह प्राचीन आचार्यों का सूत्र बन्धुवाल है, क्योंकि उसके आगे के सूत्र में जो "कः" कहा है, उसे प्रथम सूत्र में लघुपरिवर्त और अन् केवल से दो व्याख्याएँ ही सकती हैं। प्रथम मत में तो यदि करणों और शान्ति की अवधारणा बिल्लिलिभु शुरुआत के माध्यम की अधिकता का अनुसार यदि अन्य बृहद्योग को होता है, तो उसे भी प्रमाण मान लेना चाहिए।

आनन्दसरस्वत के श्रोत को रौद्र धर्मों का गुण माना। किन्तु मम्मते ने हसमें थोड़ा परिवर्तित किया: "वीरात्माविष्कृतः, श्रोता वीर-स्थितिः। वीरभद्रवीरवर्गः स्वाभाविकः क्षेत्रः च।।" प्रियाराज ने मम्मते का संशोधन किया। वीर, वीरभद्र और रौद्र रसों में पहले की अवधारणा पिकले में अंधक श्रोत होता है, क्योंकि इनमें प्रथम पिकला रौद्र मन को आधिक दीर्घ करने वाला होता है।

हाव की राधाकृष्ण के कुञ्जार मम्मत का मत, जिसका प्रतिजन ने अनुसरण किया, बहुत नहीं है। वीरभद्र में वीरर्पर्यंत नामकरण का मत है, जब कि भुदुत में वह विपुलम है उपासित है। भुदुत, हाय हर्ष और भानुक रसों के विषय में कुछ विचारों का मत है कि इनमें माधव और श्रोत होते गुणा रहते हैं और दूसरे के कुञ्जार में इनके केवल प्रशासन गुणा ही रहता है।

पिकले पृष्ठ का शेष—

(ग) "संभोगानविकर तत्वात्जीवं शान्त्वथितं विलायतः माध्यम"।

—काव्यप्रकाशः, पुरोप, ३६२ (आनन्दसरस्वतः)

काव्यप्रकाशः, पृ ३६६
भोजज भृगुराधर रामकाश, वीरराधाकृष्ण, पृ ३५८
प्रावद तो सारे रसों और सारी रचनाओं में रहता है।

इन गुणाओं के द्वारा क्रम से वृणि, दीपित, विकास ये 'चिंता की' उपाधि' उपाधि प्राप्त होती है। ये गुण चिल्लुर्तियों के प्रयोजन हैं - जनक नहीं। इत्यादि चिल्लुर्तियों उच्च लोकों गुणाओं से साक्षात्तु उत्पन्न नहीं होते, अधिक इन गुणाओं से विपियों रसों के अभावाने साक्षात्तु उत्पन्न होती हैं।

' गुणान्ते श्रेष्ठ इतिविद्यानिकावासुरा विश्वरुपं ' कन्द्रा प्रयोज्या।

इस प्रकार रस यज्ञ के इन गुणाओं के सिद्ध होने परे मुख में रहता है, इत्यादि व्यवहार इसका आचार यूर है इत्यादि व्यवहार की भावित श्रीचारिक है। जह मनुष्य भूत्र आदि का मत है।

परमुँ परिषद्धराज के विचार में है। उन्होंने क्या किया कि इन प्रावद आदि गुणाओं को केवले रस के ध्येय ही मानते में का प्रमाण है? यदि वह्य कि प्रत्येक प्रमाण है, अर्थात् पूर्वांगित रीति से तत्व रसों के आशा के पुनः चिल्लुर्तियों की उत्पन्न का रूप में शुष्क होती है, तो यह नहीं कहा जा सकता। इसका कारण है कि जैसे अभिग्न का कार्य दृढ़ करना है और उच्च स्थान स्मृति उसका गुण है और उन दोनों का गुण-मृगुण आकार होता है, उसी प्रकार रसों के कार्य इत्यादि चिल्लुर्ति और उसके गुणाओं का अला-अला अवम नहीं होता।

तेषां रसस्योऽद कि यदनु गुणप्रत्ययापेनि चेतु, न, दाहादि कार्ये-कलस्वस्याश्चलयास्वलयं भिन्नत्वाद्वास्तव इत्यादिचिल्लुर्तियों रस कार्ये-
व्योन्योऽधातुं रसस्यान्तस्यानाप्रविभावतु। ॥

अनुमान का आश्रय भी नहीं किया जा सकता। इस तरह का यदि अनुमान करें कि मार्ग आदि गुणाओं से मुख ही रस इन्हों के कारण होते हैं, ता कारणातंत्रज्ञान के रूप में उनका अनुमान किया जा सकता है।

1. रसगंगाधर - २.६८।
तो इसका उपर है कि क्या प्रत्येक रस जिना गुणाओं और उन बृत्तियों का कारण हो सकता है, तो गुणाओं की कल्पना करने में गौरव है।

"तादेहुएषायतिशिष्टसंस्थानं दुःखादिकारणात्मकारणात्मकारणाताः।
वच्चकल्पं गुणानामध्यनमानमध्यमतिचेतु, प्राचिनःकृत्तिक्षेत्रमरकात्मका
परस्परो सुलभकल्पने गौरवात्।" ।

यह लेख भी नित्यार है कि ऋषिग, करुणा और शारद्य रसों में प्रत्येक को दृष्टि का कारण मानने की भेदना "तीनों माध्यमानसुक्त हैं,
अतः तीनों से दृष्टि उत्पन्न होती है। यदि मानने में लाघव है, क्या किमुख
वाद्य ने मद्धुसुर से दृष्टि, क्या नंदनद मद्धुसर से क्या नंदन दृष्टि बादी से जो कारणों
में तारतम्य मानना है, उज्जवले तारतम्य गुण से सुन्दर होने से रस दृष्टि का
कारण होता है, यह मानना केवल गौरव होगा।

"परेण मद्धुरतालिप्तस्युद्ग्नाः मुद्धि तत्वर्तिकारणायतारस्य
प्र्योजक्यायत्तुद्ग्नानेन मद्धुरिकेत्व गुणावताया गौरवात्व।" ॥२॥

आत्मव यह है कि अन्ततः एक एक कारण का एक रस को पृथ्वी
कारण मानना ही होगा। अतः प्रत्येक रस की माध्यम आदि का पृथ्वी कारण
मानने में ही लाघव है।

इसके अतिरिक्त यह भी लेख परिभाषण ने दिया कि आत्मा
निश्चित है और रस कार्यात्मक है, अतः माध्यम आदि का रस का गुण
मानना बुद्धितंत्र भी नहीं है। इसके रसों के उपरिक्षण रत्नादि स्थायीभावों
के गुण की नहीं मानना जा सकता क्योंकि प्रथम: इसमें कोई प्रभुत्व नहीं है,
इससे ममत्त आदि के बनारस रति आदि सुलभ है, अतः उस युग में गुण
का मानना हीक नहीं है।

"किं वातने निमित्तात्मकस्यस्यात्मक नामात्मकस्य
संस्कृति तंत्रार्थविकृति गुणावत्तम, मानात्मक, परीत्या गुणावत्तरस्यात्मन्
नित्यार।" ॥३॥

लक्ष्यमार - २०५५ ।
इन्द्र - ४०३८-६५
वृंगारस पद्म होता है, इस प्रकार का व्यवहार माधुर्य आदि को गुण न मानने पर भी इस तरह से होगा कि दृष्टि आदि चिन्तुष्टियाँ की प्रयोजकता, जो रस में रहती है, उसे की माधुर्य आदि सम्बन्ध जाने और उसके ही रहने से रस की मधु आदि कहा जाता है। या दृष्टि आदि चिन्तुष्टियाँ ही जब किती रस शादि के साथ प्रयोजकता सम्बन्ध रहती हैं, तो उन्हें माधुर्य आदि कहा जाता है।

इस प्रकार इस पर एक कठिनाई हो सकती है कि यदि प्रयोजकता सम्बन्ध से रहने वाली दृष्टि आदि चिन्तुष्टियाँ का नाम की माधुर्य आदि है, तो वृंगारस पद्म होता है। इस प्रकार व्यवहार अनगित होगा, क्योंकि दृष्टि आदि चिन्तुष्टियाँ रस में रहती तो है नहीं, उन्हें उभर दी बात है। फिर रस की मधुर युक्त सैल कहा कहा जा सकता है? इसका समाधान पैदा-तराज ने इस प्रकार से किया, जिस प्रकार वाजिन्याएं उद्धारा उपलब्ध करती है, उनके वाजिन्य उष्ण होती है यह व्यवहार होता है, उसी प्रकार माधुर्य आदि के प्रयोजक होने से वृंगार आदि की मधु खा कहा जाता है।

— व्यवहारस्तु वाजिजनप्रज्ज्वलि माधुर्यवेभिरभूषण व्यवहारवदशतः।

इस प्रकार का प्रयोजक शून्य आदि की प्रयोजकता से भिन्न है।
पौन्डलराज ने इस प्रयोजक को शब्द, अर्थ, रस और रचना गति के ग्राह्य माना है, अतः पूर्वक व्यवहार की शून्य आदि में बृत्तियाप्ति नहीं हो सकती। अतः यह है कि शून्य आदि में की प्रयोजकता भिन्न प्रकार की है।
अतः। शून्य आदि में दृष्टि प्रयोजकता होने पर भी उन्हें मधु नहीं कहा जा सकता।

अतः। इस तरह का माधुर्य शब्द और अर्थ भी रहता है, केवल रस में की नहीं, अतः शब्द के माधुर्य को कल्पित नहीं कहा जा सकता।

तथा व शब्दार्थायोगिच्छ माधुर्ये देहितृष्णय सत्वादपुरावरोऽ

नैव कल्पः दृष्टि तु माधुर्यः।

1. रघुरायानाथ - ५० ६४।
2. वैध - ५० ६४।
पणिन्दराज ने गुणा सम्बन्धी विवेचन में अपने कुछ नबीन और दृष्ट मन्त्रारूप का प्रमाण किया। उन्होंने वामन के भ्रमण की अर्थकार कर विनिवादियों द्वारा भ्रमण मुग्धतावाद को ही माना किन्तु जहाँ वामन ने गुणा को शब्द और वर्ण पर्याय माना और अन्नवर्धन स्वर्य प्रम्पट उन्हें रस-यथार्थ माना, पणिन्दराज ने उन्हें शब्द, अर्थ, रस और रचना का अर्थ स्वैकार किया। रसमार्थनता के विश्लेष के उन्होंने एक और नैवात्मिक दृष्टि से दर्जे, इसी आत्मस्वाभाविक रस के अर्थ मानने-वैदिकत्व दृष्टि से क्षणति की और इस्तेमाल किया, जिस दृष्टि को उन्होंने स्वयं प्रविष्टित किया।

गुणा के सम्बन्ध में उनकी यह दृष्टि महत्वपूर्ण नवीन टप्पित्व थी।

पणिन्दराज ने गुणा को शौर्य आदि की भाँति आत्मा का कर्म न मानकर और वामन की भाँति शब्द अर्थ से भी न मानकर एक नवीन मान्यता के लिए नया भाव की है किया। उन्होंने गुणा का स्वल्प 'द्वित्वारोपित-प्रयोजक' निर्धारित किया। अत: द्वित्वारोपित प्रयोजक अर्थ प्रयोजकता सम्बन्ध में द्वित्वारोपित दृष्टि की गुणा है। यह प्रयोजकता शब्द, अर्थ, रस और रचना सभी में है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पणिन्दराज ने गुणारूप की चिन्ता बोध का बंधन करके पुन: 'चिन्ता बोध का बंधन करके उसमें अन्तर है। पणिन्दराज को चिन्ता बोध को आंक्विकतारूपातिक महत्वपूर्ण न मान कर प्रयोजकता सम्बन्ध में माना।

श्री पी. जी. लालदिपी की-अंकृति-मानने-पर ने पणिन्दराज द्वारा वर्ण आदि में गुणारूप की चिन्ता बोध मानने पर तिपपती की है —

1. कान्तकुस्स आफ रिति शब्द गुणा- पृ ५० २६७
2. राजेन्द्र, चौका, पृ २०७
3. राज संग्रहार शास्त्रीय अद्ययन, पृ २५४
And lastly, his description of the letters (Varna), composition (Rachana) and structures (Nirmiti or Gumpha) as the suggestors (Vyanjaka) of particular Gunas shows another clear instance of Mammata's influence upon him. In the treatment of Mammata, whose Guna resides in Sabda and Aartha only secondarily, the relationship of vyangya and vyanjakabetween Gunna end on the one hand and Sabda, Rachana etc. on the other, is quite justified, but in the case in the case of Jagannatha who is an adherent of the theory of Guna as a primary virtue of the Sabda, such a procedure is absolutely unwarrantable. This together with the more important position of Jagannatha regarding the question of substrata of Gunas, may be explained by the fact that he was trying to effect a synthesis of the views of the old school and those of new by borrowing materials from both. This was to a great extent responsible for the curious combination and apparent contradiction.  

---

1. Concepts of Riti and Juna PP. 265-266.
उन्होंने तो शब्दावधि से गुणवत्ता की अभिव्यक्ति में गुणवत्ता स्वीकार नहीं की।

"गृहरंजनसिवशेषार्ग सामुह्यादिगुणाभिव्यक्तिकलयेव, न रसाभिव्यक्तिपूर्व , गोरूमान मानानवालास्। न हि गुणविभ्यक्ति विना गुणाभिव्यक्तिपूर्व नास्ति निन्यः । द्वि-प्रमाण व्यभिचारार्थः।"

अन्य दृष्टि से भी परिदृष्टि के मत पर विचार अभिलेख है। उनके शृद्धारां चित्रजीत और गुणवत्ता में परस्पर का सम्बन्ध है। भट्टाचार्य ने द्वितीय विकासकाल में... भोगने कह कर चित्रजीत को भोग व्यापार से अभिन्न बताया और भोग को "विचित्रविकारान्तः" भी कहा। अभिन्न ने चित्रजीत को ही गुण बताया और उन्हें रस का कार्य भी स्वीकार किया। चित्राचार्य ने गुण और चित्रजीत को अभिन्न और चित्रजीत का पुनर्जीवन-प्रमोक्षण सम्बन्ध के सन्दर्भ में ही उन्होंने द्वितीय आदि को रस का कार्य माना। किन्तु यह प्रमोक्षण शब्द, शब्द और रचना में भी विचार माना है। यह अवशेष है कि रसप्रमोक्षण-रसकार्यकुल द्विताविदित रस के बाद होने और रचना में भी विचार है। यह अवशेष है कि रस-प्रमोक्षण-रस-कार्यकुल द्विताविदि रस के बाद होने और शब्द और रचना-प्रमोक्षण-द्विताविदि रस पूर्ण होकर रसपरिपक्व में धारण रूप में अभिन्नत होगी तथा अन्तः रस-प्रमोक्षण-द्विताविदि में परंपरित होगी।

----------------------------------------
1. लौचन, अन्यालोक, पृ. ४०८-६, अन्यालोक २७, पृ. २०७
2. रस गंगाधर, पृ. १३३
3. साहित्यज्ञान, पृ. २६४
इस प्रकार पणिडतराज ने गुणा विवेचन का जो मौलिक मार्ग उठाया,
उसमें व्याकरणदीत जन्य आवश्यक सहायता से सहजता ही थी। उनके
विशेषणां ऐसी अर्थ शब्द, अर्थ तथा रूपना द्वारा गुण की व्याख्या
स्पष्ट हुई दृष्टि से शब्दांि के महत्त्व पर नकीन प्रकाश पड़ा।
पणिडतराज का गुणा-विवेचन अपने इन विशेषताओं से उनके मौलिक-विचार
लोग विरोधाभास का सुन्दर उदाहरण बन गया है।
गुमार के अभिव्यज्ञा

गुमार के स्वस्त के साथ ही उनके व्यंग्य का विवेचन भी सम्मिलित है।
ममप्त के अनुसार वणिकमूल, समास संव रचना गुमार के व्यंग्य हैं।

"गुमार: समासों रचना लेखन व्यंग्य लाभिता।" ।

अभिज्ञ गुप्त ने भी गुमारव्यंग्यकला के सम्बन्ध में संशोधन विवरण
दिया है। किन्तु पौर्णिमा ने इस सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन किया और न
केवल अभिव्यज्ञा, अपने कविता में कार्य विशिष्ट पत्र दिया।

माधुर्यविज्ञान रचना

विभिन्न गुमार को व्यंजित करने वाली रचनाओं का विवेचन करते
केवल पौर्णिमा ने उकसान किया। माधुर्य की व्यंजित रचना के सम्बन्ध में,
उन्होंने कहा कि टवर के शताब्दिक धन्य वर्गों के प्रथम, तीतीय बनार तथा उ.
ज, र, त, र, ल, रे रहित, सौम्य-सौम्य में युक्त कुलसंधारण, परस्परवाणी और
केवल अनुसाराक में युक्त, भाग विशिष्ट सामान्य और विशेष रूप से संयोगावेश
के स्वर्ण से रहित, समास के प्रयोग से श्रुत्व अन्य समास के क्रौल प्रयोगों से
युक्त रचना मदुर होती है।

"तब उक्त संविधाना संवर्गः प्रथमतौरीयः। शारिरस्याच गठिता, नैक्षेमन
प्रकृतस्य सहस्य, परस्पराणी।" द्वादशान्तरस्य सौभिष्टा, विशेषानां सामान्यानि विशेष-
स्वर्ण निर्माणः संयोगार्थित सद्धियताः कृतमात्रायुक्तार उत्पन्नां स्वर्णाः पुवर्तिताः। माधुर्या

1. काव्यप्रकाश ५१७१
2. कवितालोक, ५० २०५, २१०
व्यंजिका । ६ कवारं के दूररे तथा चौथे वर्ण यदि दूर दूर हों, तो वे न इस गुण के प्रलिङ्ग होते हैं और न अगुण जिन्हें उनके गुणों के पास-भास हैं और अनुसार का निर्माण करते हैं, तो प्रलिङ्ग भी हो जाते हैं। कुछ लोगों के अनुसार वर्गे के अतिरिक्त वर्णों के रांचों वर्ण समान रूप से पार्थिव्यंजन होते हैं।

अनुवादिव्यंजक रचना—

अनुवादिव्यंजक के बन्ध में पास-पास में प्रयुक्त वर्णों के दूररे और चौथे वर्णों, टवरं के वर्ण, विष्णुपीलिपि, उपनिशद, किसी एव सबकार बुलवर्ण, वर्णों के श्रम, यही तथा, वर्ण और चौथे वर्णों अथवा रूपरेखा में जिनके बारे हैं, ऐसे हुए स्वर स्वर तथा कहे बंद समाप्त होते हैं। एकेक बंध के भीतर जो आए वर्णों के पहले और दूसरे वर्ण यदि संयुक्त न रहें, तो न अगुण होते हैं, न प्रलिङ्ग और यदि संयुक्त हों, तो अगुण होते हैं। अनुसार और परस्पर अगुण होते हैं, न प्रलिङ्ग।

प्रसादिव्यंजक रचना—

प्रसाद गुण की रचना वाक्यार्थ को करना पर सिखत वेर की भावति अनायास निवेदित करती है। यह गुण सबी रस, भाव आदि में रखता आदि है—

________________________

१. रामानंद, पृ० ८०
२. लुलिय ये मूर्ति वर्गान्त्यभाः स्पर्शं अवंगान रणाधिब।
अवनिलखितां माध्यं घटना तथा।।
— काव्यप्रकाश ८१७४
३. लुलिय ये योग शास्त्रियायमयन्त्यथा रेणा तुल्योः।
टात्तिप: सप्तो मृतिकायो गुणं उद्दत वौजस।।
— काव्यप्रकाश—५१७५
रचना के दोषः

मानिए, श्रीमुनि और प्रसाद की अवधिकरण रचना के लिए शून्य सामान्यता और शून्य विशेषता वर्तनीय दोष हैं।

सामान्य दोषः

एक श्रद्धा का साथ ही फिर वे प्रयोग, यदि एक पद में एक बार हो, तो हमने उसे कूद करत ही रखा हो, तो अब वह अब ज्यादा रखा हो, और अब कूद करत ही रखा हो। इसी प्रकार भिन्न भिन्न पदों में बार बार हो तो, और भी कूद करत होता है।

इसी तरह पहले जिसे वर्ग का वर्ग बाया है, उसके साथ ही यह उसी वर्ग के अन्य वर्ग का प्रयोग, यदि एक पद में और एक बार हो तो, कारण वह कूद करत ही रखा हो, पर यदि बार बार हो तो अब कूद करत होता है।

इसी तरह भिन्न भिन्न पदों में हो, तब भी अब कूद करत होता है और यदि भिन्न भिन्न चरणों में बार बार हो, तो और भी अब कूद करत होता है।

यह एक वर्ग के अन्य वर्गों का सह प्रयोग रखने के बाद दूसरे और तीसरे के बाद चूजते का हो, तभी अनुचित होता है। पहले और तीसरे एवं दूसरे और तीसरे श्रेणि का प्रयोग तो उतना अच्छा नहीं होता, किन्तु अच्छा होता है।

9. रमणागाभर, पृ ५९७-८२

सुल्तान —

इतिहासिक शब्दादु बैनाक्षण्त्यो भेदत्।
साधारण: समाप्ताः स प्रसादो गुणारे मत: ॥

— काव्यप्रकाशः ५१७६
जिसे रचनायमें ही समक्ष सकते हैं। यह अखिल पहले के बाद तीसरे का और दूसरे के बाद तीसरे का प्रयोग भी यदि बार बार हुआ, तो उसे साधारण लोग भी समक्ष सकते हैं। पंचव वार्ता का अपने वर्ण के वार्ता के पहले या पीछे शाना हुए नहीं प्रतीत होता, किन्तु एक शैल का साथ ही साथ यदि बार बार प्रयोग हो, तो उसका प्रयोग भी अध्ययन होता है।

ये क्रियात्मक वर्ण पुरुष वार्ता के बीच में चा जाने से हट जाती है। यह पुरुषस्तर जिन दो वार्ता के बीच में आता है, उन दो में एक के बाद दूसरे के आने के कारण जो क्रियात्मक उत्पन्न होती है, उसे ही दूर करता है। इसी प्रकार तीन तथा तीन वर्ण के संयोग भी क्रियात्मक होता है। पुरातन के अन्त में दूसरे के आने के कारण उसका मनुष्य पद में संयोग हो तो, तो उसका एक बार भी प्रयोग क्रियात्मक होता है। यदि बार बार हो तो वह अपनी क्रियात्मक अध्ययन होता है।

बबन - क्रियात्मक- मुल-वार्ता- के- जीवन में- वह जाने से- हट-जाती है - । बहु पुरुषस्तर परस्वार्थ के कारण जो संयोग होता है, उसका दृष्टि के अन्तर विश्लेषण होना नाममात्र भी क्रियात्मक नहीं होता, क्योंकि वह सर्वथा भिन्न पद में नहीं होता और मद्दर भी होता है। पुरातत्त्व भिन्न पद गत संयोग बाद के यदि बार बार आये, तो क्रियात्मक कारक हो जाता है।

इन क्रियारूपों के कारण क्रियात्मक पंथ चा लाता है, उसकी सर्व भारा में अलौकिक ता जाता है, अत: इनका परिहार आचरणकार है: —

"बबन फार्मत्व क्रियात्मक पंथुक्तमिक प्रतीत ये।"

सत्य के समन्वय में यह उल्लेखनीय है कि सत्य का अपनी इच्छापुर्वक एक बार भी तिरस्कार क्रियात्मक होता है, किन्तु प्रभुत्व संस्ता के कारण होने वाली क्रियात्मक यदि बार बार आये तभी क्रियात्मक होती है। इसी प्रकार ये ये वे के तोप के कारण जो सत्य नहीं की जाती, यदि वह बार बार न की जाये तभी क्रियात्मक होती है।

इसी तरह 'उं' के ' उं ', छू पर रहने पर ये के तोप, यथा,

1. रामणान्धन 20 अं
गुण, वृद्धि, सवारियों, पुरुषोपाधिकरण के पास पास ही सबक प्रयोग भी अत्यधिक के कारण होते हैं।

उपर्युक्त सबी क्रम भेद सबी क्रमों में करनीय है। किसी रस के वर्णों में इन क्रमतात्त्वों का न आने देना ही उचित है।

विशेष दोषः

विशेषतः वर्तित जो दोष मधुर रसों में निषिद्ध हैं, वे ब्रजस्वल रसों के अनुकूल होते हैं और जो मधुर रसों के अनुकूल होते हैं, वे ब्रजस्वल रसों के प्रतिकूल होते हैं।

तम मधुरसेवा ये विशेषतों करनेप्रथा अनुपुर्ण करने त स्वरूपस्वरूपमुक्तः, ये चारुकुलके त्योलासे त्रितुतुता हादित सामान्यतो निषेधः।

मधुररसों में निषिद्धः

मधुर रसों में लम्बे समासों, वर्णों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ वर्णों के संयोगपर इसवर, पिसवर, विसवर के आदेशमुखस्तंभाँ, जिल्लामुखियों, उपमानीयों, टवर्ण के वर्णों और प्रत्येक वर्ण के आदि चार वर्णों, एक तथा हत्तार से निर्मित संयोगों को छोड़ना चाहिए। तद्र, न के अतिरिक्त अन्य व्याख्यानों के उल्लेख के साथ संयोगों के चतुर्थ पर्यन्त वर्णों में से किसीं दो संयोगों के पार पार चार वर्ण के प्रयोग को छोड़ना चाहिए। जिनके स्थान और प्रयोग समान हैं। ऐसे वर्णों के प्रथम से चतुर्थ तक के वर्णों के संयोग और श, स, ल के अतिरिक्त किसी महाप्राण शरीर से निर्मित संयोग का एक बार भी प्रयोग न आने देना चाहिए।

इसी तरह इत्यादि प्रयोग, वहृंभन, वहृंसृंगत तथा अन्य इसी

1. रसकंगारु, पृ५३-५४
2. " " पृ५३-५४
प्रकार के वैयक्तिक प्रयोगों को मध्यरात्रि में प्रयुक्त न करना चाहिए।

पतिपत्र जैसे नया और अन्य ग्रन्थ के प्रयोगों के प्रति विशेषरूप के साथ-धान किया है। अन्य के आस्वादन से पृथक्, विशेष प्रकार की चोटिजना की क्षीणता रखने वाले, उपर्युक्त तौर पर अभिक बमकारों के अनुसार तथा यक्षाहिनी को, यदि वे बन सकते हैं, तथापि प्रयोग न करना चाहिए।

"एवं अनुप्रमृत्तिरिक्त-विशेषपेक्षानु अधातिकोकवलकारिणाः
न्यासानिवन्धाः यमकादिकाः विस्तरतीतिपि कर्तिप्रवन्धियाः।"

क्योंकि यदि वे अभिक और प्रधान दुः, तो उनका समावेश रस-स्वरूप में नहीं होगा, सक्षम और वे सृष्टिक होगा को अपनी तरफ बैठक कर, रसपराहुङ्गु बन जाए। विशुद्ध जूंगार में तो इस बात का पूर्ण अध्यात्म बनना चाहिए, क्योंकि यह मधुरलम होता है और जैसे निर्मत निर्मली से निर्मत पानी रस में धारावही पी देशी जीत की स्वरंत्रता जमाने लगे, तो सृष्टिकों को पस्त नहीं बाती उसी तरह विशुद्ध जूंगार में भी। पतिपत्र का इस स्थान में व्यविक-कार से पूर्ण फलक है:

"अन्यातप्तमोहेश्वरे यमकादिकनवन्धः।
शक्ता विकार युक्तमित्वं विप्रवधे विशेषितः॥

परन्तु जो अनुप्रमृत्तिरिक्त विशेष और विस्तुल न होने के कारण पृथक्, अनुस्मृतम नहीं होते, अनुस्मृत रसों के आस्वादन में ही सुवृत्त स्वरंत्रसक्ति होते हैं उन्हें बोधना भी नहीं चाहिए।

इस विशेष और साधारण कोशों से रहित, मधुर के भार के फटे से पहले सुन्दर पदों और वाणों के विन्यास से सुक्त, निमाता की अनुपाति की प्रकाशिका, प्रकाशगुणांकी और पूर्णपरिपक्व वृत्ति को वैद्यों कहते हैं।

---------------------------------------------------------------------

1. अन्यातमोहेश्वरे: २१४,१५
इस रैली के निर्माण में अत्यन्त सावधानी बरतनी चाहिए, अन्यथा परिपार भंग हो जाता है।

पौराणिक ने ध्वनिकार्य के अनुसार इन गुणों की व्याख्या रचना करते हुए उनके साहित्य विशेष ग्रंथों का भित्ता मूलमंत्र विवेक किया, जहाँ काव्य-शास्त्र की व्याख्या की व्याख्या संपत्ति है। इस विवेक में उनके अपने काव्य-साहित्यिक प्रारंभिक और अनुभव का योग है। अत्यन्त सत्यित्व और स्पष्ट दृष्टि के साथ उन्होंने काव्य रचना के इस पद का सुन्दर व्याख्यान किया।